वीर संवत् २४९१, आसोज शुक्ल ०५, बुधवार
दिनांक-२९-०९-१९६५, गाथा-१२, प्रवचन-१०

परमात्मप्रकाश, पहले भाग (अधिकार) की १२वीं गाथा। यहाँ शिष्य का प्रश्न है। ऐसा आचार्य ने कहा कि आत्मा का स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आत्मा वस्तुस्वरूप से शुद्ध चिदानन्द की ज्योति, उसका स्व अर्थात् अपना वेदन। अकषाय भाव का सम्यग्ज्ञान के प्रकाश के साथ वीतरागी वेदन (होना), उसे स्वसंवेदन कहा जाता है। उसे धर्म की शुरुआत चौथे गुणस्थान से कहा जाता है।

तब शिष्य ने प्रश्न किया कि **वीतराग विशेषण क्यों कहा ? क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह तो रागरहित होवेगा ही।** समझ में आया ? शिष्य को इतना तो आशंका का भाव आया कि यह स्वसंवेदन आत्मा जो है, वह अपना स्वरूप शुद्ध, उसे अपने से—स्व से सं—प्रत्यक्ष वेदन करे, वह तो वीतरागभाववाला ही होता है। ऐसा तो शिष्य ने प्रश्न किया है। तथापि **वीतराग विशेषण क्यों कहा ?** समझ में आया ?

इसका समाधान श्रीगुरु ने किया कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी विषयों के, कषायों के परिणामों का स्व में वेदन होता है, उसे भी स्वसंवेदन कहने में आता है, परन्तु वह विषयों का, भोग का, राग का वेदन वह रागवाला है। समझ में आया ? आत्मा वीतरागी विज्ञानघन है। वह अपना विषय, ध्येय छोड़कर पाँच इन्द्रियों के विषय शुभाशुभ चाहे जो हो, उस ओर के पुण्य-पाप का विकार, वह राग है और उस राग का वेदन, वह स्वसंवेदन कहा जाता है। अपना वेदन है राग का, परन्तु वीतरागी वेदन नहीं। समझ में आया ? क्या फरमाया ? लो!

आत्मा विषय का वेदन करे, वह कहीं जड़ का वेदन नहीं, पर का नहीं। आत्मा आनन्दमूर्तिस्वरूप स्वविषय को छोड़कर, परविषय में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि में जो रागादि को करके वेदन करता है, वह स्वसंवेदन है। अपना वेदन अर्थात् विकार का वेदन है, वह कहीं जड़ का और पर का नहीं है। इसीलिए स्वसंवेदन में वीतरागता

कहने का यह कारण है कि, यह स्वसंवेदन जो रागवाला है, वह वेदन यहाँ लेना नहीं है। समझ में आया इसमें?

आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस और अकषायस्वभाव, उसका वह प्रभु सागर—पूर्ण भरपूर है। उसका जो स्व, स्व अर्थात् अविकारी वीतरागीस्वभाव का। स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष, राग बिना आत्मा की शान्ति का, ज्ञान का वेदन हो, उसे यहाँ वीतरागी स्वसंवेदन कहने में आता है। समझ में आया? वह चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन से स्वसंवेदन वीतरागी वेदन प्रगट होता है। इसलिए स्वसंवेदन को वीतरागी वेदन कहने का आशय कि विषय के भोग को परसन्मुख के वेदन में स्वयं वेदता है तो राग को—विकार को और अपना वेदन है। अपना अर्थात् स्वरूप की बात यहाँ नहीं है। परन्तु विकार को वेदता है, उसमें अकेला राग है। इसलिए उस राग का वेदन, वह स्वसंवेदन वीतरागी नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें? आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि, अनन्त काल में इसमें कहीं पर को तो कभी वेदन किया नहीं। जड़ को, शरीर को, पैसे को, लड्डू, दाल, भात को वेदन किया नहीं। इसमें वेदन किया तो अपना ही भाव है। परन्तु वह अपना भाव वह राग और विकार और कषायवाला है। उसे इसने वेदन किया। उस रागवाली वेदना को पृथक् करने के लिये सम्यग्दृष्टि को वीतरागी स्वसंवेदन होता है, इसलिए स्वसंवेदन को वीतराग शब्द लागू करना पड़ा। ओहो! कहो, सेठी! यह तो पुराने व्यक्ति हैं, तो भी अभी इन्हें पूछना पड़ता है नया। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग के वेदन के समय...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का वेदन और राग का ही ज्ञान है, स्व का ज्ञान और स्व का वेदन नहीं। ठीक! अनादि वस्तु तो भगवान पूर्णानन्द से भरपूर तत्त्व वस्तु पदार्थ आत्मा है। उसका स्व-ज्ञान और स्व का वेदन तो वीतरागी ज्ञान और वीतरागी वेदन होता है। परन्तु पुण्य-पाप के भाव का वेदन और उसका ज्ञान, वह तो राग का ज्ञान और राग का वेदन है। समझ में आया इसमें? ऐई! जमुभाई! अब ऐसा सूक्ष्म। भीखाभाई! आहाहा!

वस्तु है या नहीं? एक गुड़ की इतनी बड़ी डली हो। समझ में आया? तो गुड़

का स्वाद आवे, वह गुड़ की मिठास का आता है या नहीं? या गुड़ के ऊपर कोई धूल का दल बाहर आ गया जरा। यह नहीं डालते उसमें? गुड बाँधे न जरा (उसमें) काली धूल डाले, साबुन डाले और उसमें कोई साबुन का भाग और जरा धूल का भाग रह गया, उसका स्वाद वह कहीं गुड़ का स्वाद है? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और अनाकुल आनन्द का स्वरूप, उसमें जितने विकार पुण्य-पाप के, राग-द्वेष के होते हैं, वह धूल और साबुन का कोई टुकड़ा रह जाये उसमें—गुड़ में, हों! थोड़ा-थोड़ा डाले न? वह स्वाद दूसरा हो जाये। इसी प्रकार चैतन्य का स्वाद स्व का ज्ञान और स्व का स्वाद, वह वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्वाद है। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप ही है, वीतराग अर्थात् अकषायस्वभाव का घन आत्मा है। आहाहा! अकषायस्वभाव का पिण्ड आत्मा भगवान है। उस आत्मा का अन्दर ज्ञान और आत्मा का वेदन (हो), वह स्व ज्ञान और स्व का शान्ति का वेदन है। उसे वीतरागी वेदन कहा जाता है और यह विषय का वेदन राग का, भोग का, विकल्प का, मान, यह कीर्ति, इस ओर का राग, इस राग का वेदन यह है अपना वेदन, परन्तु वह स्वभाव का नहीं; विकार का वेदन है। समझ में आया? आहाहा! उसमें कोई लड्डू और दाल-भात और रुपये का वेदन नहीं। क्या होगा? मूलचन्दभाई! नहीं?

एक तो यह घी महँगा मिले पाँच सौ रुपये का, रुपये का पाँच सेर होगा? रुपये का पाँच सेर तो पहले था। पाँच रुपये का सेर। कहो, अब उसका स्वाद कैसा आता होगा? स्वाद घी का आता होगा? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से पूर्ण स्वरूप है। वह तो केवलज्ञान का, केवल—अकेले ज्ञान का और अकेले वीतरागी अविकारी स्वभाव का कन्द-पिण्ड वस्तु आत्मा है। अब वह स्वयं पर का विषय करे तो कुछ पर को वेदता नहीं। वेदन के समय राग करता है, द्वेष करता है, विकल्प (करता है), उसे उसकी पर्याय में, अवस्था में अनुभव करता है। परन्तु यह विकारी वेदन है, वह दुःखरूप है और वह संसार है, ऐसे रागवाले वेदन को भिन्न करने के लिये स्वसंवेदन को वीतरागी वेदन कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? ओहोहो!

विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,...

देखा ? उसका जानपना तो होता है। इस राग का, द्वेष का, यह अमुक है। **परन्तु रागभावकर दूषित है,...** ज्ञान तो होता है न ? ज्ञान कहाँ चला जाये ? यह राग का ज्ञान, द्वेष का ज्ञान, पुण्य का ज्ञान, पाप का ज्ञान, भोग का, वासना का ज्ञान। **वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित हैं, इसलिए निजरस का स्वाद नहीं है,...** इससे भगवान आत्मा अकेला जैसे... यह कोल्हापुर का गुड़ नहीं होता ? क्या कहलाता है वह ? रवा... रवा बड़ा। उसमें आधे नम्बर का गुड़ आता है कुछ। बहुत ऊँचा कहते हैं। नहीं ? आधे नम्बर का न ? ऊँचा आता है। वह तुम गये थे न ? रत्नगिरी। वे सब साथ में घूमते थे न, उन्हें खबर है न! सफेद वाचका जैसा ऐसा समझे न ? अधमण लिया था तो मोटर में चूहा खाने लगा। निकला नहीं उसमें से चूहा।

हाँ। वहाँ निकलकर पानी पी आवे। और वापस घुस जाये वहाँ गुड़ खाने। फिर फतेहपुर में निकाला। ऐसा ऊँचा सफेद (गुड़)। उसका स्वाद होगा न जीव को ? उसका ज्ञान है कि यह गुड़ है। यहाँ ज्ञान है परन्तु रागवाला ज्ञान है। समझ में आया ? ज्ञान में तो जो आवे उस वस्तु का ख्याल आवे या नहीं ? यह ज्ञान है, वह जानता है कि यह गुड़ है और उसमें राग होता है। उस राग का स्वाद लेता है, गुड़ का नहीं। ज्ञान वस्तु का है, स्वाद राग का है।

मुमुक्षु : गुड़....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ? राग का गुड़ ऐसा कहाँ कहा ? गुड़ का ज्ञान कहा। यहाँ क्या कहा ?

उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,... यह गुड़ है, यह दूधपाक है, यह स्त्री का माँस-शरीर है, ऐसा ज्ञान में आता है परन्तु उस ज्ञान में इकट्ठा राग है, विकार है, वह विकार दोषी का ज्ञान वह विकार का आस्वादन है। वह भले स्व का—अपने विकार का हो तो भी वह विकारवाला है। वह ज्ञान, ज्ञान नहीं कहलाता। जिसमें स्वज्ञान मिले नहीं और रागरहित हो नहीं, उसे ज्ञान नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, नेमिदासभाई! आहाहा! कैसे होंगे यह पोरबन्दर के भैंस के घी कुरिया ? मीठा तो लगता होगा या नहीं ? कि नहीं। उस वस्तु का (ज्ञान होता है)। परन्तु यह क्या लिखा है ? इसमें देखो न! यह वस्तु का ज्ञान है, ऐसा कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : जीव का ज्ञान है परन्तु मजा उसका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा राग का है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! धरमचन्दभाई! आहाहा! है न? भाई ने बहुत सरस लिखा है। है न पुस्तक हाथ में कितनों को? तुम्हारे है? तुम्हारे कहाँ से आया?

मुमुक्षु : पुस्तक हाथ में है परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या कहते हैं, इतना ख्याल में तो... नहीं ख्याल उसकी अपेक्षा ख्याल में आवे, इतना अलग तो पड़े न? ऐई! क्या कहा? क्या कहा?

शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया कि प्रभु! आप स्वसंवेदन को वीतरागभाव, वीतराग विशेषण क्यों लगाया? वीतराग स्वसंवेदन क्यों कहा आपने? क्योंकि जो कोई वेदन हो, वह तो आत्मा का ही वेदन है। समझ में आया? यह राग (होता है, वह) कहीं पर का वेदन नहीं। चाहे जिस चीज़ के काल में खड़ा हो, भले उस चीज़ का ज्ञान यहाँ होता हो अपने सम्बन्धी, इस ज्ञान में वह ज्ञात हो, यह गुड़ है, यह स्त्री है, यह दूधपाक है, यह पूड़ी है, यह इज्जत कहते हैं, मेरी महिमा करते हैं। समझ में आया? इसके ज्ञान में आवे, परन्तु स्वाद उन महिमा के शब्दों का नहीं, स्वाद उस पूड़ी और दाल-भात का नहीं, स्वाद राग का है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? भगवानजीभाई! आहाहा!

कहते हैं, यह समझते वाँचते नहीं, उसके प्रयोग में तो यह बात कहाँ से हो? परन्तु यह क्या कहते हैं, इस प्रकार से समझते नहीं। चौथे गुणस्थान में शुभभाव और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (हो), वह समकित, जाओ। और शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान। यहाँ तो कहते हैं कि पर विषय का ज्ञान, देव-गुरु और शास्त्र, ऐसा ज्ञान होता है। भाई! ऐई! परन्तु उसकी श्रद्धा करता है, तब राग है, वह राग का वेदन है, वह स्वसंवेदन वीतरागी वेदन नहीं।

हाँ, ऐसा कहते हैं। वस्तु ली है या नहीं?

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र भी आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु पर में ऐसे देव-गुरु-शास्त्र यह है, ऐसा ज्ञान में आता है।

परन्तु उसके प्रति वह श्रद्धा करता है, वह राग है। उस राग का वेदन है, आत्मा के स्व का वीतरागी वेदन नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो परसम्बन्धी का राग है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर आया वहाँ। गौशाला का मैं स्वामी हूँ वहाँ। और यह काका-काकी गाँव में कहलवाते हैं, हम बड़े सेठिया हैं। इन शब्दों का स्वाद तुझको नहीं है। समझ में आया? परन्तु यह बात ज्ञान में नहीं आती? ऐ... काका! ऐ... काका! करते-करते तुम्हारे घर में आवे। बेचारे घर में आवें, हों! अन्दर घुसे, अन्दर। वह पहले खड़े रहे दरवाजे के पास। इसलिए उनकी अनुकूलता देखे तो फिर अन्दर मुहल्ला में जाये। ऐ... काका! ऐ... काका! फिर ऐसा कहे, आओ, आओ। यह सब ज्ञान आता है या नहीं? ख्याल में आता है या नहीं? परन्तु ख्याल नहीं, वह राग है, उस राग का स्वाद है, उसकी महिमा का नहीं। नेमिदासभाई! बात उतारी है घर में ठीक न? आहाहा!

कहते हैं, भाई! वस्तु दो। एक स्वयं और एक दूसरी अनन्त वस्तुयें। देखो! अब अनन्त वस्तुओं में स्व स्वरूप का ज्ञान न करके परवस्तु की ओर के झुकाववाला ज्ञान, वह ज्ञान तो करता है कि यह शरीर है, यह वाणी है, यह देव है, यह प्रतिमा है, यह भगवान है, यह समवसरण है, यह है... यह है, यह पुत्र है, यह ज्ञान आता है, परन्तु उसके साथ राग आता है, परन्तु पर के लक्ष्य से राग हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु : राग में तो खो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खो गया। यह क्या कहते हैं तुम्हारे काका?

मुमुक्षु : उसमें से मुझे वापस खींचकर निकालना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें नहीं खो गया, मुफ्त का मानता है—ऐसा कहते हैं। ऐई! देवानुप्रिया! यह लड़के कहते हैं कि यह काका ऐसा क्यों बोलते हैं? खो कहाँ गया? यह रहे। नहीं? आहाहा!

कहते हैं, भाई! वस्तुएँ दो। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर भगवान आत्मा पदार्थ, अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यरस का कन्द तथा एक ओर पूरी दुनिया।

फिर देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार, धन्धा कोई भी वस्तु सामने हो। यहाँ ऐसा कहना है कि भगवान आत्मा अपना स्वस्वभाव, उसका ज्ञान करके जो वेदन करे, वह रागरहित ज्ञान और रागरहित वेदन होता है। यह चौथे गुणस्थान की भूमिका है। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की प्रथम भूमिका यह है कि जो भगवान आत्मा वस्तु अतीन्द्रिय शान्त अनाकुल आनन्द का पिण्ड, रवो पूरा, उसका ज्ञान, उसका लक्ष्य, उसका ध्येय करने से जो उसका ज्ञान होता है, उसमें अनन्तानुबन्धी का राग और मिथ्यात्व का अभाव होकर ही वह ज्ञान होता है। इतना विकाररहित वीतरागी ज्ञान (होता है), उसे यहाँ स्वसंवेदन ज्ञान, धर्म का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप ज्ञान उसे कहा जाता है। समझ में आया?

यह वीतरागपना विशेषण इसलिए दिया कि जीव अपने स्वभाव का ज्ञान छोड़कर अपनी अरागी परिणति को छोड़कर; छोड़कर अर्थात् उत्पन्न नहीं करके, ऐसे भगवान आत्मा पर के लक्ष्य से कोई भी ज्ञेय हो, उसे जानने का कार्य उस समय में है, इसलिए करता है, जानता है। जानते हुए उसे राग, द्वेष, वासना, रति, अरति आदि का विकार का उसे वेदन है। वह वास्तविक स्वसंवेदन नहीं कहलाता। ऐसा वेदन तो अनादि से निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक बहिरात्मा गया, उसे ऐसा वेदन है। वह कहीं अपूर्व वेदन नहीं है, वह अपूर्व ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

जो **कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित हैं, इसलिए निजरस का आस्वाद नहीं है,...** आहाहा! अरे! ऐसे मार्ग की सत्यता, प्रभु! इसे कान में पड़े नहीं, यह विचारने को कब प्रयत्न करे? और पर से हटकर उसका वेदन कब करे? उसे अध्धर से ही ऐसा का ऐसा मनवा ले (कि) यह माना, वह समकित। भाई! समकित की दूज उगी, उसे पूर्णिमा—केवलज्ञान होनेवाला है। ऐसी दूज बोधि-बीज है। इसलिए कहते हैं, **निजरस का आस्वाद नहीं है,...** अज्ञानी को पर के ज्ञान के काल में राग का वेदन है। उसे निज स्वभाव का आस्वाद और निज स्वभाव का ज्ञान नहीं है।

और वीतरागदशा में स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है,... देखो! परन्तु वीतराग

(अर्थात् कि) रागरहित जितने अंश में दशा हो, **स्वरूप का यथार्थ ज्ञान...** स्वरूप का यथार्थ ज्ञान अपना। **होता है, आकुलता रहित होता है।** समझ में आया? पश्चात् स्वरूप का, स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब उसे वस्तु के पर स्वरूप का भी अन्दर ज्ञान यथार्थ हो गया। स्वस्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप का ज्ञान होने पर, रागरहित ज्ञान हुआ, इसलिए यह रागादि बाकी जो परवस्तु है, वह मुझमें नहीं, ऐसा ज्ञान भी उसके स्वरूप का भी यथार्थ (ज्ञान) उसमें आ गया। स्व-परप्रकाशक ज्ञान का सामर्थ्य इतना खिल गया। समझ में आया?

वीतरागदशा में... वीतरागदशा अर्थात् चौथे से लेकर, हों! **स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है, आकुलता रहित होता है। तथा स्वसंवेदनज्ञान प्रथम...** अब यह, अब यह। स्वसंवेदनज्ञान पहली दशा में, पहली दशा में—शुरुआत में, **चौथे पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ के भी होता है,...** समझ में आया? यह स्वसंवेदनज्ञान पहली दशा में शुरुआत में समकिती और पाँचवें गुणस्थान में गृहस्थ को भी होता है। देखो! मुनिपने के अतिरिक्त दो यह लिये। कोई कहे कि, मुनि को ही ऐसा होता है, (तो ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : यह तो मुनि को इनकार करते हैं। आठवें गुणस्थान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आठवें में... अरे! भगवान! क्या करता है? पूरा वीतरागमार्ग उथल-पुथल कर दिया है। अरे! इसकी पद्धति की प्रणालिका की प्ररूपणा बदल डाली। वस्तु तो उसकी बदल गयी है अन्दर। समझ में आया?

यह आत्मा चौथे, पाँचवें गुणस्थान में (हो), **ऐसा स्वसंवेदन गृहस्थ के भी होता है,...** यह चक्रवर्ती का राज हो, बलदेव का राज हो, इन्द्रपद का पद हो, उसमें भी जिसे जो चौथा, पाँचवाँ (गुणस्थान) हो, उसे भी यह स्वसंवेदनज्ञान होता है। **वहाँ पर सराग देखने में आता है,...** अब क्या कहते हैं? चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) भी अभी राग देखने में आता है। चौथे में तीन कषाय, पाँचवें में दो कषाय—राग (होता है)। उस राग का निषेध करने को वहाँ वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान कहा जाता है।

फिर से। **स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ**

के भी होता है, वहाँ पर सराग,... वहाँ पर, हों! वहाँ भी। बहिरात्मा के वेदन में तो राग है ही, वह तो मात्र राग का वेदन है, परन्तु चौथे-पाँचवें में भी राग है, अभी दिखता है। **देखने में आता है,...** देखने में आता है। समझ में आया? **इसलिए रागसहित अवस्था के निषेध के लिये...** यह चौथे, पाँचवें में भी राग दिखता है, तथापि उस राग के निषेध के लिये वीतरागी स्वसंवेदन कहा गया है। समझ में आया?

एक तो विषय के आस्वाद का राग ज्ञान, वह वीतरागी नहीं, रागवाला है, इसलिए उसका निषेध करने के लिये वीतराग विशेषण कहा और दूसरा चौथे, पाँचवें में अभी राग दिखता है। वह राग दिखता है, वह स्वसंवेदन नहीं, उसका ज्ञान है; परन्तु उससे रहित जितना स्व का ज्ञान होकर रागरहित वेदन (होता है), उसे स्वसंवेदन वीतराग वेदन कहने में आता है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? शब्द भी कैसे! देखो न! **स्वसंवेदनज्ञान वहाँ पर सराग देखने में आता है,...** राग है, राग का ज्ञान भी है। परन्तु उस राग का निषेध करने के लिये स्व का ज्ञान (होकर), रागरहित जितना वेदन हुआ, उसे वीतरागी स्वसंवेदन कहा जाता है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ नहीं, बड़ा बादशाह है। चैतन्य का बादशाह स्वयं। मूढ़ कैसे कहा जाये इसे? मान बैठे, उसे क्या करना? समझ में आया?

चैतन्य का सूर्य जगमगाता हजार किरणें सूर्य उदित हो। यह तो अनन्त किरणों से खिला हुआ चैतन्य अन्दर स्थित है। ऐसा भगवान आत्मा चौथे, पाँचवें गुणस्थान में भी स्व का ज्ञान करके रागरहित जितनी दशा हुई है, वह वीतरागी स्वसंवेदन बताने को, उसे राग होता है, उसका निषेध करने को, वीतराग स्वसंवेदन कहा जाता है। समझ में आया?

दो प्रकार कहे। वीतराग विशेषण क्यों कहा? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया, इसके दो उत्तर दिये। एक तो पर का ज्ञान करके रागवाला वेदन (होता है), उसका निषेध करने के लिये यह कहा है। दूसरा, अपने स्वसंवेदन में भी अभी राग बाकी है। उस स्वसंवेदन काल के समय राग दिखता है। उस राग के निषेध के लिये स्वसंवेदन का

ज्ञान जितना रागरहित हुआ, वह वीतरागी ज्ञान है, ऐसा बतलाने के लिये 'वीतराग' विशेषण कहा गया है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

यह तो शशीभाई कहते थे, बाल के बीच-बीच में की बात चलती थी न अभी तक। परसों आये थे। परन्तु यह तो कहे, बाल-बाल में (तेल डाला जाता है)। बहुत दिमागवाला व्यक्ति है, हों! शशीभाई परसों आये थे, बहुत प्रसन्न होकर। ओहोहो! वह सवेरे तीज का व्याख्यान सुना न! यह तो बाल के बीच में तेल डालते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। परन्तु वह तो बाल-बाल में (तेल डाला जाता है)। परन्तु जिसे बाल हो, उसे खबर पड़े या नहीं? बाल बिना का सिर होता है। खबर है या नहीं? उसे क्या कहा जाता है? गंजा। है न यह एक मनसुखभाई का पुत्र, नहीं? मनसुखभाई का बड़ा पुत्र गंजा। मनसुखभाई का पुत्र। मनसुख ताराचन्द, नहीं? डॉक्टर। गुजर गये न? उनके तीसरे नम्बर के लड़के को पहले से बाल नहीं, जन्म से नहीं, बाल ही नहीं। यहाँ एक बार आया था। दरवाजे के पास खड़ा था। भावनगर विवाह में आया था। मनसुख ताराचन्द, करोड़पति। तीसरे नम्बर का पुत्र। विवाह हो गया। पैसे है या नहीं? वह है न!

इसी प्रकार आत्मा की अनन्त लक्ष्मी अन्दर पड़ी है, उसकी लगन लगे, उसे परमात्मा मिले बिना रहते नहीं। समझ में आया? उसे राग-बाग होता नहीं। वह नहीं। राग बिना का ज्ञान बताने को वीतराग विशेषण कहा है। पाठ में तो '**अन्तरात्मलक्षण-वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन**' इतने शब्द हैं। यह उसका यह है न? अन्तिम लाईन। आहाहा! पहले के गृहस्थ भी ऐसे थे। समझ में आया? यह पण्डित है। (अभी तो) बहुत बदल गया।

ओहो! भगवान आत्मा पूरा पूर्णानन्द का नाथ! पूर्ण... पूर्ण अनन्त-अनन्त सुख का सागर प्रभु आत्मा है। अकेला गुड़ का रवा जहाँ चीरो वहाँ गुड़ ही निकले। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शान्तरस का (पिण्ड है)। जहाँ नजर डालो वहाँ उसकी शान्ति और ज्ञान ही उसका होता है। समझ में आया? चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) राग देखने में आता है। समझ में आया? इस राग के निषेध के लिये **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान, ऐसा कहा है।** कहो, बराबर है?

रागभाव है, वह कषायरूप है, इस कारण जबतक मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी कषाय है, तबतक तो बहिरात्मा है,... यहाँ तक तो अकेले राग और विकार का ही ज्ञान और विकार का वेदन है। समझ में आया? अथवा परपदार्थ का ज्ञान और विकार का वेदन है। उसे तो आत्मा का ज्ञान और आत्मा का वेदन जरा भी नहीं। समझ में आया? **उसके तो स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान सर्वथा ही नहीं है,...** किसे? जिसकी दृष्टि अकेले परपदार्थ की मान्यता पर है, उसे कषाय अनन्तानुबन्धी सहित है, उसे तो सम्यग्ज्ञान का एक भी अंश नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा परन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं। समझ में आया? ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा (परन्तु वह) सम्यग्ज्ञान नहीं, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण नहीं।

और चतुर्थ गुणस्थान में (अविरति) सम्यग्दृष्टि के... अब उन दो में चौथे गुणस्थान की बात लेते हैं। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अविरति को **मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी के अभाव होने से सम्यग्ज्ञान तो हो गया,...** आत्मा का सम्यग्ज्ञान सच्चा ज्ञान हो गया। स्व-विषय ज्ञान में बनाकर और आत्मा कौन है, उसका ज्ञान हुआ। **परन्तु कषाय की तीन चौकड़ी बाकी रहने से...** कषाय की तीन चौकड़ी अभी राग में बाकी है। राग तीन प्रकार का बाकी है—अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। **बाकी रहने से द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं होता...** इसका अर्थ यह कि उसे द्वितीया के चन्द्रमा जैसा प्रकाश है, परन्तु उससे विशेष नहीं है। शब्द तो ऐसे हैं जानो। **द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं...** अर्थात् कि दूज का चन्द्र बहुत प्रकाशवाला नहीं, ऐसा उसका प्रकाश है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूज तुरन्त अस्त हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अस्त-फस्त की बात नहीं है। दूज अस्त होकर तीज उगती है, तीज अस्त होकर चौथ उगती है। उगती है, वह यहाँ लेने की बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अविरति होने पर भी उसे आत्मा का सच्चा ज्ञान अन्तर्मुख का होता है। उसे इतने अंश में वीतराग ज्ञान कहा जाता है परन्तु

उसे तीन (प्रकार का) राग (बाकी) है, इसलिए दूज के चन्द्रमा का जो प्रकाश है, उतना प्रकाश है। इससे अधिक प्रकाश वीतरागी विज्ञान का प्रकाश, वीतरागी की जो प्रकाश की शान्त पूर्ण विशेष चाहिए, वह नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं कि, पहले गुणस्थान में तो कुछ सच्चा ज्ञान भी नहीं और कुछ वीतरागी अंश भी नहीं। वह तो अत्यन्त राग और कषाय का वेदन और पर का ज्ञान है। अब चौथे (गुणस्थान) में स्व का ज्ञान और अन्दर द्वितीया के चन्द्रमा जितना वीतरागी प्रकाश है। राग बिना के ज्ञान का (वेदन है)। पूर्ण वीतरागी आत्मा जो है, ऐसे आत्मा का राग के अंश बिना अनन्तानुबन्धी के अभाववाला, इतने राग बिना का ज्ञान और इतना उसका वीतरागी वेदन होता है। परन्तु दूज के चन्द्रमा का प्रकाश जैसे थोड़ा है, ऐसा उसे प्रकाश वीतरागी विज्ञान का थोड़ा है। विशेष पाँचवें, छठवें में चाहिए, ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **और श्रावक के...** यह श्रावक। लो! भगवानजीभाई! यह श्रावक कहलाये अब। यह सब अभी तक श्रावक थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं वह।

श्रावक को अर्थात् कि पाँचवें गुणस्थानवाले को। क्यों पाँचवें गुणस्थान में क्या आया विशेष? कि **दो चौकड़ी का अभाव है,...** दूसरा अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय का भी पाँचवें गुणस्थान में, दर्शन प्रतिमा, पहली प्रतिमावाले को, उसका अभाव है। समझ में आया? क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार। अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय (संज्वलन) कषाय। **तीन चौकड़ी बाकी...** क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार। अप्रत्याख्यानावरणीय की बाकी चौथे में, प्रत्याख्यानावरणीय की बाकी, संज्वलन की बाकी है। पाँचवें गुणस्थान में दो (कषाय चौकड़ी) बाकी है। प्रत्याख्यान और संज्वलन के दो भाग बाकी हैं। दोनों। क्रोध, मान, माया, लोभ चारों के। दो के चार-चार। यह कहेंगे चौकड़ी और क्या वापस? मुफ्त में चला जाये नहीं।

श्रावक को पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी का अभाव है। अर्थात्? आत्मा का अन्तर स्वसंवेदनज्ञान का प्रकाश दो प्रकार के कषाय के अभाववाला वीतरागी प्रकाश

उसे हुआ है। चौथे गुणस्थानवाले की अपेक्षा उसका वीतरागभाव बढ़ गया है। चौथे गुणस्थानवाले की अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान का वीतरागभाव (बढ़ गया है)। उसके एक कषाय, मिथ्यात्व का अभाव था, इसके दो कषाय का अभाव है। इतना वीतरागभाव बढ़ गया है। परन्तु दो चौकड़ी का अभाव है। **इसलिए रागभाव कुछ कम हुआ,...** समझ में आया? चौथेवाले की अपेक्षा उसका राग कुछ कम हुआ है। **वीतरागभाव बढ़ गया,...** देखो! वीतरागभाव चौथे (गुणस्थान में) तो है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रत्याख्यानावरणी... तुमको भी कहाँ कुछ खबर नहीं होती और क्या कहना तुमको? चार प्रकार के कषाय हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ और चार प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय, संज्वलन। कभी मजदूरी के कारण किया कब है यह निवृत्ति से? सच्ची बात है या नहीं? भाई! यह तुम्हारे भतीजे को पूछना है।

यह कषाय है। उसमें चौथे गुणस्थान में (क्रोध, मान, माया, लोभ की एक चौकड़ी का अभाव होता है)। पहले गुणस्थान में मिथ्याश्रद्धा—मिथ्यात्व और चार कषायें हैं। चार अर्थात्? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय और संज्वलन। तथा एक-एक के वापस चार—क्रोध, मान, माया और लोभ। ऐसे सोलह प्रकार होते हैं। तब चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी की एक चौकड़ी गयी। अर्थात् उसके चार क्रोध, मान, माया, लोभ गये। इतना वीतरागभाव प्रगट हुआ। पाँचवें में अप्रत्याख्यानावरणीय की दूसरी चौकड़ी गयी। इसलिए दूसरे प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव हुआ, उतना वीतरागभाव पाँचवें गुणस्थान में बढ़ गया। आहाहा! समझ में आया इसमें?

रागभाव कुछ कम हुआ,... किससे कम हुआ? चौथे गुणस्थान से। सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अकेला जो पर विषय का ज्ञान और राग था, वह अकेला था, वह छूट गया। मिथ्यात्व छूटकर स्व का ज्ञान सम्यक् में हुआ, अनन्तानुबन्धी छूटकर स्वरूप के आचरण की स्थिरता हुई, इतना रागरहित भाव हुआ। पाँचवें गुणस्थान

में उससे अधिक वीतरागभाव बढ़ा, रागभाव घटा। देखो! यह पाँचवें गुणस्थान की पदवी! आहाहा! यह तो... ऐई! मोतीरामजी!

मुमुक्षु : प्रतिमा आयी कितने में?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा आयी पाँचवें में। परन्तु पाँचवें में वीतरागभाव बढ़े और वह विकल्प रहे, वह दो कषाय का विकल्प है। समझ में आया? जितना दो कषाय टलकर वीतरागभाव बढ़ा, उसे पाँचवाँ गुणस्थान कहा जाता है। आहाहा!

वीतरागमार्ग की... श्रीमद् कहते हैं न? कथनी घिस गयी। वीतरागभाव जो है, वह धर्म है। शुरुआत से वीतरागभाव वह धर्म, यह कथनी घिस गयी, ऐसा उन्होंने लिखा है। भाव तो नहीं परन्तु कथनी—प्ररूपणा घिस गयी है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ प्रभु, महा पदार्थ महा प्रभु का विषय करके ध्येय में लेकर एक कषाय और मिथ्यात्व का नाश हुआ, उतना तो वीतरागी अंश रहा, हुआ। तीन भले रह गये। पाँचवें (गुणस्थान में) दो कषाय गयी, उतना वीतरागभाव बढ़ गया, रागभाव घट गया। (चौथे में) वह तीन था, यह दो रह गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर में कुछ प्राप्ति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में क्या दिखे? बाहर में पशु हो, मगरमच्छ हो। अन्दर में पाँचवाँ गुणस्थान होता है। बाहर में बड़ा राजा हो और मिथ्यादृष्टि हो, साधु हो और ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हुआ हो और मिथ्यादृष्टि हो। बाहर की नहीं, अन्तर की वस्तु है। समझ में आया?

इस कारण स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,... अपने को पकड़ने का ज्ञान भी वीतरागी विशेष हुआ न? ज्ञान तो था, परन्तु रागरहित हुआ, वह पकड़ने का विशेष (हुआ)। **स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,...** ऐसा कहा, भाई! समझ में आया? वह राग इतना घटा है न, उतना स्व विषय को पकड़ने में बढ़ा है ऐसे। पकड़ने में बढ़ा है, ऐसे अन्दर। कहो, समझ में आया? इस अपेक्षा से, हों! उस स्व की लब्धि का उघाड़ इतना बढ़ा। रागरहित हुआ, वहाँ इतना पकड़ने में उसे प्रबलपना हुआ।

परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ। मुनि को जो

प्रकाश चाहिए, वीतरागी स्वसंवेदन प्रकाश की बात है, हों! तीन कषाय के अभाव से ही मुनि को वीतरागी पर्याय से आत्मा का जो वेदन है, ऐसा वेदन श्रावक को नहीं। **मुनि के तीन चौकड़ी का अभाव है, इसलिए रागभाव तो निर्बल हो गया,...** मुनि हैं, उन्हें तीन चौकड़ी का अभाव है और राग तो बलरहित हो गया। परन्तु है सही। **वीतरागभाव प्रबल हुआ,...** उसको **स्वसंवेदन भी प्रबल हुआ...** कहा था न? इसे वीतरागभाव भी प्रबल, विशेष हो गया।

नहीं, फिर प्रबल हुआ कहा है न? वीतराग (भाव) बढ़ गया और स्वसंवेदन प्रबल हुआ, वह भी कहा था। पाँचवें में। **स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ, परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ...** ऐसा यहाँ वापस वीतरागभाव प्रबल हुआ। छठवें में तीन कषाय का नाश करके स्वभाव का आश्रय इतना लिया है, इतना वीतरागभाव बढ़ गया है। समझ में आया? ऐसी बातें तो कभी सुनने को मिलती होगी। नहीं? छह काय की दया पालो, व्रत पालो, यह करो, वह करो। लो! परन्तु अब उसमें क्या करने का है? जो क्रिया वास्तविक क्या है, उसका भान ही नहीं होता और यह करो और यह करो। वह तो कर्ताबुद्धि—बहिरात्मबुद्धि है अनादि से। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा को वीतरागी प्रकाश पूरा प्रगट हुआ, तो चौथे से उसमें का वीतरागी विज्ञान प्रगट हुए बिना चौथा कैसे कहलाये? पाँचवें में वीतराग विज्ञान बढ़ गया, छठवें में वीतरागभाव प्रबल हुआ। ओहो! तीन कषाय का अभाव स्वरूप को पकड़ने को वीतरागता एकदम प्रबल हुई। **वहाँ पर स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ,...** देखो! **वीतरागभाव प्रबल हुआ...** उसमें **वीतरागभाव बढ़ गया...** कहा था। चौथे से पाँचवें में। यहाँ **स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ,...** वीतरागभाव प्रबल हुआ। **परन्तु चौथी चौकड़ी बाकी है,...** संज्वलन चौथा कषाय है न? चौकड़ी अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ। एक-एक को वापस चार-चार।

इसलिए छठ्ठे गुणस्थानवाले मुनिराज सरागसंयमी हैं। देखो! वह राग बाकी है न? इस अपेक्षा से उसे सरागसंयमी कहा है। बाकी तो तीन कषाय का अभाव वीतराग परिणति अन्दर है। आहाहा! यहाँ तो छठवें की बात अभी लेते हैं न? **वीतरागसंयमी के**

जैसा प्रकाश नहीं है। देखो! जैसा रागरहित प्रकाश है, उतना छठवें में नहीं है। क्योंकि अभी राग बाकी है। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में मुनि को पंच महाव्रत आदि के विकल्प, राग बाकी है; इसलिए उसे सरागसंयमी कहा जाता है। वह वीतराग संयमी जैसा प्रकाश नहीं है। ऐसा प्रकाश नहीं परन्तु वीतरागी प्रकाश बिल्कुल नहीं, ऐसा नहीं है। जैसा रागरहित अन्दर चैतन्य को प्रकाश, प्रकाश को वीतरागता से पकड़े आगे गुणस्थान में, ऐसा प्रकाश छठवें गुणस्थान में नहीं है। वापस इसका अर्थ (ऐसा करे) कि, वे वीतरागी जैसे हैं, ऐसा इसे नहीं है, इसलिए बिल्कुल वीतरागी ही नहीं (ऐसा नहीं)। तब तो चौथे से यहाँ बात ली है। वह गृहस्थ का है।

परन्तु यह कहेंगे न! अन्तरआत्मलक्षण वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान। इसका अर्थ कि चौथे से बारह (गुणस्थान)। यह तो इसमें पाठ है। व्याख्यान में चौथे से बारह, इस शब्द में से निकलकर स्पष्टीकरण किया है। यों ही नहीं किया है। समझ में आया?

वीतरागसंयमी के जैसा प्रकाश नहीं है। मुनि छठवें गुणस्थानवाले, हों! अन्दर स्व-विषय का ज्ञान है और तीन कषाय के अभाववाला वीतरागी प्रकाश प्रगट हुआ है। परन्तु जैसा ऊपर के गुणस्थान में वीतरागी प्रकाश संयमी को है, वैसा यहाँ नहीं। **सातवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी मन्द हो जाती है,...** मन्द, अब कहते हैं। उसमें छठवें में अभी पूरी थी। सातवें में मन्द हो जाती है। सातवें गुणस्थान में संज्वलन, जो चौथी कषाय, उसके चार भाग होते हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, वे मन्द हो जाते हैं। **वहाँ पर आहार-विहार क्रिया नहीं होती,...** सातवें गुणस्थान में आहार-विहार का विकल्प नहीं, ऐसा कहते हैं। क्रिया तो जड़ की नहीं परन्तु उसे विकल्प नहीं। छठवें में हो, वह सातवें में नहीं होता। ओहोहो! **ध्यान में आरूढ़ रहते हैं,...** इतनी तो अन्दर एकाग्रता हो गई है कि उसे आहार-पानी का विकल्प नहीं होता।

सातवें से छठे गुणस्थान में आवे, तब वहाँ पर आहारादि क्रिया है,... सातवें से छठवें में आवे, तब उसे आहार के विकल्प का राग होता है। वह सातवें में मन्द था, वह यहाँ तीव्र है। समझ में आया? मन्द कहा था न वहाँ? मन्द है। यहाँ छठवें में तीव्र है। इतना आहार का, पानी का, विहार का-चलने का विकल्प है। **इसी प्रकार छठा-सातवाँ**

करते रहते हैं,... इसी प्रकार छठवें-सातवें में करते रहते हैं, लो! मुनि उसे कहते हैं। छठवाँ-सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ हजारों बार झूला करते हैं। छठवें में हों तब तीन कषाय के अभाव का और चौथे कषाय के उदय का। सातवें में हो तब तीन कषाय के अभाव के साथ संज्वलन के मन्दता का, इतना मन्दता का राग घटकर वीतरागता बढ़ गयी है। सातवें में कषाय की मन्दता है, इसलिए वीतरागता बढ़ गयी है। इसलिए वहाँ आहार और पानी लेने का विकल्प उसे नहीं है। नीचे उतरे तो और वापस राग तीव्र होता है, तब तीन कषाय का अभाव है परन्तु कषाय की तीव्रता, संज्वलन की तीव्रता है, संज्वलन की तीव्रता है, है उसकी मन्दता सातवें में थी, उसकी तीव्रता है। समझ में आया? गजब बात की है, भाई! **वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल है।** लो! समझ में आया? सातवें गुणस्थान में भी अन्तर्मुहूर्त ही काल रहते हैं। थोड़े काल रहते हैं, हों! यह छठवें-सातवें में होकर....

यह मुहूर्त के अन्दर। मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी का मुहूर्त। उसके अन्दर। उसके बहुत भंग, बहुत भंग हैं। यहाँ तो अन्तर्मुहूर्त शब्द रखा है। मुहूर्त दो घड़ी का एक कहलाता है न? दो घड़ी का मुहूर्त। उसके अन्दर, अन्दर में बहुत भाग फिर छोटा... छोटा... छोटा... यहाँ तो सातवें गुणस्थान की बात लेनी है।

आठवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी अत्यन्त मन्द हो जाती है,... सातवें में मन्द थी, आठवें गुणस्थान में अत्यन्त मन्द हो जाती है। **वहाँ रागभाव की अत्यन्त क्षीणता होती है,...** रागभाव आठवें में बहुत क्षीण हो जाता है। **वीतरागभाव पुष्ट होता है,...** लो! आठवें में वीतरागभाव पुष्ट होता है। वीतरागभाव पुष्ट होता है, वीतरागभाव ही अकेला आया, ऐसा नहीं। समझ में आया? आठवें में वीतरागता है और नीचे अकेली सरागता है, ऐसा नहीं। वीतराग तब आठवें में आवे। नीचे तो सब सराग ही है। यहाँ तो कहते हैं कि वीतरागभाव जितना सातवें में था, उससे आठवें में अधिक पुष्टता को प्राप्त होता है। बस, इतनी बात है। संज्वलन का अत्यन्त मन्द भाव हुआ था... स्वभाव सन्मुख वीतरागी ज्ञान को... है तो वह ध्यान में। आठवें वाला तो ध्यान में होता है। परन्तु वीतरागभाव वहाँ विशेष पुष्ट हुआ है। शुद्ध की स्थिति की धारा बढ़ी है। उसे श्रेणी कहा जाता है।

स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है,... लो! स्वसंवेदन अर्थात् अपने को पकड़ने के वेदने का विशेष प्रकाश। यहाँ बारह अंग का और ग्यारह अंग का ज्ञान विशेष उघड़ गया है, ऐसी यहाँ बात नहीं लेना है। **स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है,...** ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा को अन्दर पकड़ने की एकाग्रता हुई है, उसमें बहुत निर्मलता बढ़ गयी है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो चौथे से लेकर बारह तक ले जायेंगे। अन्तरात्मा की व्याख्या करते हैं न यह? कहो, इसीलिए तो कहते हैं, '**अन्तरात्मलक्षण-वीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानेन।**' अन्तरात्मा की व्याख्या की है। चौथे में वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान, पाँचवें में वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान करते-करते बारहवें तक पूरा होता है। फिर उसका फल है केवलज्ञान।

श्रेणी माँडने से शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। लो! इस आठवें से शुद्धता की वृद्धि हुई, इसलिए शुक्लध्यान—आत्मा का उज्ज्वल ध्यान (होता है)। राग बहुत घट गया, इसलिए निर्मल पर्याय द्रव्य में एकाकार हुई। **श्रेणी के दो भेद हैं,...** इस शुद्धता की श्रेणी के दो प्रकार। **एक क्षपक, दूसरी उपशम,...** एक क्षय करता हुआ स्थिरता पावे, एक उपशम करता हुआ स्थिरता पावे। **क्षपकश्रेणीवाले तो उसी भव में केवलज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं,...** लो! आठवें से जो क्षपक है, स्वरूप की स्थिरता बिल्कुल क्षायिकभाव से शुरु हुई है, वह तो उसी भव में केवलज्ञान होकर मुक्त हो जाते हैं। समझ में आया?

और उपशमवाले आठवें, नवमें, दसवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर... उपशमवाला जो आठवें में जाये, उपशमश्रेणी स्थिर होकर, किसी को क्षायिक समकित भी हो और किसी को उपशम हो। समझ में आया? वह **आठवें, नवमें, दसवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर...** वह ग्यारहवें में जाये। **पीछे पड़ जाते हैं,...** उपशमवाले की अवधि इतनी। वापस गिर जाये। **सो कुछ एक भव भी धारण करते हैं, तथा...** सो कुछेक भव। सो कुछ अर्थात् कितने ही। सो कुछ अर्थात् कितने ही भव धारण करे, ऐसा। कौन? उपशमवाला।

तथा क्षपकवाले आठवें से नवमें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं,... क्षपक शुद्धता की उग्रता बढ़ी है, वह तो आठवें से नौवें में और वहाँ से (पूर्णता पाता है)। **वहाँ कषायों**

का सर्वथा नाश होता है,... गुणस्थान में प्राप्त होते हैं, वहाँ कषायों का सर्वथा नाश होता है, एक संज्वलनलोभ रह जाता है, अन्य सबका अभाव होने से वीतरागभाव अति प्रबल हो जाता है,... नवमें, नवमीं भूमिका—गुणस्थान। **इसलिए स्वसंवेदनज्ञान का बहुत ज्यादा प्रकाश होता है,...** स्वसंवेदन ज्ञान का बहुत अधिक प्रकाश होता है। वह वीतरागता बढ़ी, उतना प्रकाश बढ़ा, ऐसा। **परन्तु एक संज्वलनलोभ बाकी रहने से वहाँ सरागचारित्र ही कहा जाता है।** देखो! उसको सरागसंयमी कहा, यहाँ सरागचारित्र कहने में आता है। रागसहित है न थोड़ा। **दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ भी नहीं रहता,...** सूक्ष्म लोभ रहता है परन्तु अन्त में नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। **तब मोह की अट्ठाईस प्रकृतियों के नष्ट हो जाने से वीतरागचारित्र की सिद्धि हो जाती है।** दसवें में थोड़ा लोभ रहता है।

दसवें से बारहवें में जाते हैं, ग्यारहवें गुणस्थान का स्पर्श नहीं करते,... कौन? क्षपकवाले। **वहाँ निर्मोह वीतरागी के शुक्लध्यान का दूसरा पाया (भेद) प्रगट होता है, यथाख्यातचारित्र हो जाता है। बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीनों का विनाश कर डाला,...** विनाश कर डाला। देखा? विनाश हो जाता है। **मोह का नाश पहले ही हो चुका था,...** मोह का नाश तो पहले हुआ था। **तब चारों घातिकर्मों के नष्ट हो जाने से तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान प्रगट होता है,...** वर्तमान वह वस्तु नहीं, इसलिए बहुत संक्षिप्त करके वर्णन किया है। चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें का स्पष्टीकरण अधिक है। **वहाँ पर ही शुद्ध परमात्मा होता है,...** वहाँ पूर्ण परमात्मा तेरहवें गुणस्थान में होते हैं। **अर्थात् उसके ज्ञान का पूर्ण प्रकाश हो जाता है, निःकषाय है।**

अब यह अन्तिम शब्द था न? कि '**अन्तरात्मलक्षणवीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानेन**' अथवा पाठ क्या था? देखो! '**मुणि सण्णाणैं णाणमउ जो परमप्प-सहाउ**' '**सण्णाणैं**' शब्द पड़ा है न? '**सण्णाणैं**' का अर्थ '**स्वज्ञानेन**' किया है, हों! '**स्वज्ञानेन**' किया है। संस्कृत। वह '**सण्णाणैं**' शब्द है न? उसका '**स्वज्ञानेन**' ऐसा (पाठ) किया है। उसकी यह व्याख्या है, यह '**सण्णाणैं**' शब्द की यह सब व्याख्या है। उसकी टीका यह है '**अन्तरात्मलक्षणवीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन जानीहि**' '**मन्यस्व**' है न? यह। उसकी यह व्याख्या की इतनी सब, लो!

चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक तो अन्तरात्मा है,... यह सब बारहवें तक अन्तरात्मा की व्याख्या की है। स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान। **उसके गुणस्थान प्रति चढ़ती हुई शुद्धता है,...** पाँचवें में शुद्धता बढ़ी, छठवें गुणस्थान, गुणस्थान बढ़ती जाती है। **और पूर्ण शुद्धता परमात्मा के है,...** लो! केवली को पूरा हुआ। **यह सारांश समझना।** अन्तरात्मा की व्याख्या बहुत सरस हुई। चौथे से बारहवें तक पाठ में '**सण्णाणँ मन्यस्व**' '**सण्णाणँ मन्यस्व**' अन्तरात्मा की यह सब व्याख्या टीका में संक्षिप्त करके, इसका ही विस्तार यह किया हुआ है। घर का कुछ नहीं है, हों! ऐसा कहते हैं, घर का डाला है। पाठ में है, '**मुणि सण्णाणँ णाणमउ**' है न! और ज्ञानमय का अर्थ ही पाठ में किया '**ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तमिति**' अकेला आत्मा। उसका वेदन शुरु होकर चौथे और बारहवें में अन्तरात्मा का पूरा हुआ। अन्तरात्मा की अपेक्षा से पूरा, पूर्ण प्रकाश तेरहवें में पूरा हुआ है। ऐसी स्थिति को अन्तरात्मा कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)